ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

विकलांग बालकों की शिक्षा व्यवस्था

डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव[1] माया कुमारी जोशी[2]

शोध सारांश

प्रत्येक समाज में शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से दुर्बल एवं दोषयुक्त बच्चे और व्यक्ति मिलते है। जैसे – अंधे, लूले, मूर्ख, जड़, अनार्थ संरक्षण विहीन आदिन इन बालकों की विशिष्ट बालकों की श्रेणी में रखा जाता है।

एक समय ऐसा था जब इन अशक्त, असमर्थ, असहाय एवं अपाहिज व्यक्तियों को भाग्यहीन माना जाता था इनके विचारों एवं विकृतियों को इनके पूर्व जन्म के कर्मों का फल कहा जाता था तथा समाज के लिए अभि”ाप समझा जाता था और समाज के स्वस्थ्य व्यक्तियों के समान इनके जीवन यापन के अधिकार को स्वीकार नहीं किया जाता था।

वर्तमान में शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, अक्षमता युक्त बालकों की सीखने में कठिनाई की ध्यान में रखते हुए इन्हें शिक्षा कार्यक्रमों से जोडा जाना अधिक उचित प्रतीत होगा।

अंधे, मूक–बधिर एवं अन्य श्रेणी के विकलांगों के लिए हमारे दे” ा में अनेक विद्यालय है। अधिकां” ा विकलांग छात्र शिक्षा से नहीं जुड पाने के कारण ऐसे विद्यालयों की जानकारी से अनभिज्ञ रहते हैं। विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा के लिए उसके पारिवारिक सदस्यों की समस्या के प्रति जागरूकता समाज की चेतनता तथा अध्यापकों का प्रशिक्षण तथा शिक्षा के प्रति उसे अभिप्रेरित करना बहुत ही आव” यक है।

विकलांग हमारे समाज का अभिन्न अंग माना जाता है। इन्हें उचित जागरूकता तथा अवसरों के प्रति अभिप्रेरित व प्रोत्साहित किया जाये तो दे” ा की सामाजिक व्यवस्था तथा विकलांगों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण समाप्त करके इन्हें समाज से उच्चता के शिखर पर पहुंचाया जा सकता है। जब तक इन अक्षमता युक्त बालकों के विकास का प्रयास नहीं किया जायेगा तब तक सम्पूर्ण समाज प्रगति एवं विकास के पथ पर अग्रसर नहीं होगा।

प्राचार्य, महाराजा सूरजमल टी.टी. कॉलेज, भरतपुर (राज.), prerana1212jain@gmail.com
प्रवक्ता, महाराजा सूरजमल टी.टी. कॉलेज, भरतपुर (राज.)

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

विशिष्ट बालक और उनकी शिक्षा

केवल उनके शारीरिक दोषों को निकाल कर शारीरिक ग्रसित व्यक्ति साधारण बालक के समान होते है अतः ऐसे बालकों को उन सब शैक्षिक क्रियाओं की सुविधा देनी चाहिए जो साधारण बालक को दी जाती है किन्तु हमें उनके शारीरिक दोषों को भी सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

केवल उन व्यक्तियों को छोड़कर जो इस प्रकार के गम्भीर दोष रखते है जो उनके काम में बाधा डाल सकते है बाकी सबको उचित व्यावसायिक शिक्षा का आयोजन होना चाहिए जो बालक गम्भीर दोषयुक्त हैं उनके लिए हमें इस प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध करना चाहिए जो शारीरिक दोष के होते हुए भी ग्रहण कर सके। व्यावसायिक समायोजन उनके अंदर आत्म सम्मान की भावना उत्पन्न कर देगा और अपने जीवन को स्वयं महत्वपूर्ण बनाने के योग्य हो जायेंगे इसके लिए उन्हें उस क्षेत्र में विकसित होने का अवसर दिया जाय जिसके लिए के मानसिक और शारीरिक दृष्टिकोण्या से उपयुक्त है।

शिक्षा के द्वारा शारीरिक ग्रसितों के सामाजिक समायोजन को भी देखना चाहिए ग्रसित की होगा दोष के प्रति यथार्थ की भावना उत्पन्न करने की प्रेरणा देनी चाहिए साथ ही किसी कार्य को करने की योग्यता पर भी उसे बल देना चाहिए ग्रसित को प्रयोगात्मक रूप में कार्य करने का अवसर देना चाहिए जिन्हें वह अपनी पूर्ण शक्ति की सीमानुसार करें जिससे उसका ध्यान शारीरिक ग्रसितता से विचलित हो जाय। उसको इस प्रकार प्रेरणा देनी चाहिए कि वह य समझे कि वह अपने समूह का महत्वपूर्ण अंग है।

जो बालक भाारीरिक, सामाजिक, सांवेगिक एवं नैतिक दृष्टि से विद्यार्थी पिछडे हुए या कमजोर है किन्तु बौद्धिक दृष्टि से प्रखर है उन्हें शिक्षा दी जा सकती है। ऐसे विकलांग बहुत अच्छे–अच्छे काम कर सकते हैं। जिनके पैर नहीं है वे हाथों के कार्य बडी कु" ालता से करते हैं। जिनके हाथ नहीं है वे दूसरे हाथ से ही दोनों हाथों के बराबर काम कर लेते हैं। जिन्हें दोनों आखों से दिखाई नहीं देता वे बहुत अच्छे शिक्षक बन सकते हैं।

प्रशिक्षण उनके लिए उपयोगी रहता है। जो बौद्धिक दृष्टि से बहुत प्रखर नहीं है वे किसी भी कार्य की बताये हुए ढंग से कर लेते है।

विशिष्ट बालक और पाठ्यक्रम –

(1) शारीरिक दृष्टि से विकलांगों में – ऐसे पाठों के निर्धारण की आव" यकता है। जिनके द्वारा विद्यार्थियों को यह जानकारी या सीख मिल सके कि विकलांग लो भी महान कार्य कर सकते हैं।

(2) सामाजिक या शारीरिक दृष्टि से दोनों के लिए – नैतिकता पूर्ण ऐसे पाठों के निर्धारण की आव" यकता है। जिनमें दुष्कृत्यों के दुष्परिणामों तथा सुकृत्यों के सुपरिणामों की बात बताई गयी है।

(3) सांवेगिक दृष्टि से अस्थिर विद्यार्थियों के लिए – साहस, उत्साह को बढावा देने वाले तथा घृणा, क्रोध, भय जैसे संवेगों का शमन करने वले पाठों के निर्धारण की आव" यकता है।

(4) मानसिक दृष्टि से मंद विद्यार्थियों के लिए – सिलाई, कढाई बुनाई आदि पर आधारित हस्त–कौ" ालों से सम्बन्धित पाठों के निर्धारण की आव" यकता है।

भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था –

यदपि हमारे देश में विकलांगों और अक्षम व्यक्तियों के लिए अच्छे उपचार और शिक्षा की व्यवस्था नहीं है। फिर भी सरकार ने इस दिशा में कुछ प्रयास किये है। कुछ प्रयासों में सरकार को पर्याप्त सफलता भी मिली है। देश में विकलांगों की आवश्यकताओं के अनुसार कुछ संस्थाऐं खुली हैं जो आज भी कार्यरत है।

अंधों के लिए शिक्षा –

1955 की योजना आयोग की रिपोर्ट के अनु भारत में 20 लाख अंधे व्यक्ति है। जिनमें से बहुत थोडे अंधे ही शिक्षा पा रहे है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने उप शिक्षा सलाहकार के नियंत्रण में अंधों के पुनर्वास और शिक्षा के लिए एक इकाई बनायी गयी है। 1950 ई. के देहरादून में एक प्रौढ अंध प्रशिक्षण हेतु स्थापित किया 1951 ई. को अजमेर और बटेन (कच्छ) में अंधों के लिए बच्चों को टोकरी बुनना, कातना, बुनाई करना, टाइप करना और स्टेनों ग्राफी आदि का प्रशिक्षण पढाई के साथ–साथ दिया जाता प्रशिक्षण के बाद अंधों के पुनर्वास और सेवा (नौकरी) की समस्या पैदा होती है। अतः 1950 ई. को मद्रास में एक सम्बन्धता विभाग खोला गया जो प्रशिक्षित अंधों के लिए साहित्य तैयार करने

की दृष्टि से एक ब्रेल प्रिन्टिग प्रेस देहरादून में खोला गया जो सफलता पूर्वक काम कर रहा है।

बहरों गूंगों और अक्षम के लिए शिक्षा –

भारत में अंधे व्यक्तियों और बालकों के साथ ही बहरों, गूंगों और अन्य अक्षम व्यक्तियों के शिक्षा दी जाती है। अंधों को संगीत सिखाया जाता है। और अन्य को चित्रकला सिखायी जाती है। अंधों की भांति उन्हें भी उनकी क्षमतानुसार कोई न कोई शिल्प या व्यवसाय सिखाया जाता है।

शारीरिक विकलांगों के लिए शिक्षा –

शारीरिक विकलांगों को अंधों की भांति उभरे अक्षरों के माध्यम से नहीं पढाया जाता उन्हें साधारण उपचार के बाद सामान्य स्कूलों में शिक्षा दी जाती है। उन्हें सम्बन्धित उपकरणों की सहायता से अंग संचालन का प्रशिक्षण दिया जाता है। ताकि वे काम भी कर सकें।

मानसिक विकलांगों के लिए शिक्षा –

मानसिंक विकलांग बालकों और व्यतियों की मानसिक उपचार के लिए मानसिक अस्पताल में भर्ती करके उसका मनोविश्लेषक द्वारा उसके रोग का निदान किया जाता है। उसके बाद उपयुक्त वातावरण और सुविधाऐं दी जाती है। मानसिक अस्पतालों के साथ–साथ मानसिक चिकित्सालय निदेशन केन्द्र की आवश्यकता होती है। जिनकी हमारे देश में भारी कमी है। जो अस्पताल काम कर रहे हैं उनमें पूरी व्यवस्था नहीं है।

बाल अपराधियों के सुधार की शिक्षा –

देश में बाल अपराधियों की संख्या बढने से समाज में बुराईयों फैल रही है। और समाज के सामने एक प्रमुख समस्या पैदा हो रही यद्यपि विभिन्न राज्यों में बाल अधिनियम बाल अपराध अधिनियम और सुधारात्मक अधिनियम द्वारा बाल अपराधों को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु विशेष सफलता नहीं मिल पा रही हो भारत सरकार ऐसी सुधार संस्थाओं की र्प्यन्त अनुदान दे रही है। बडे–बडे नगरों में रैन–बसेरे स्थापित किये जा रहे है। जहाँ बेघर लोग रात्रि को विश्राम करते है बाल अपराधियों को विशिष्ट सुधार संस्थाओं में रखकर जहाँ शिक्षा दी जाती है। अनेक कारणों का निदान करके उन्हें व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाती है।

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

संदर्भ ग्रन्थ–

1. पाठक पी.डी. एवं त्यागी जी.एस.डी. आधुनिक भारतीय शिक्षा इतिहास और समस्याएँ प्रकाशक–विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 10 सितम्बर 1976, पृष्ठ संख्या–500–516
2. चौबे प्रो. सरयू प्रसाद : स्वदेश–विदेश में शिक्षा (विश्वविद्यालय स्तर की कक्षाओं हेतु) प्रकाशक – विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्रथम संस्करण–1984
3 शर्मा, बी.एन : शिक्षा मनोविज्ञान प्रकाशक–साहित्य प्रकाशक, आगरा नवीन संस्करण : 1994
4. 'नई शिक्षा' अंक–2, आर.एन.आई.–3917/57 संस्करण–30 सितम्बर 2012, बनीपार्क जयपुर।
5. 'राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका अंक 1 से 2, खण्ड 56 NNI 1063/65 अप्रैल 2011 से सितम्बर 2011, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेर।

*****

NERI

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

''ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन''

डॉ0 देवेन्द्र कुमार अग्रवाल

शोध सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति का स्तर क्या हैं ? न्यादर्श हेतु राजस्थान राज्य के चार संभागों से 8 जिले (जयपुर, दौसा, टोंक, नागौर, स0मा0, करौली, कोटा एवं झालावाड़)से ग्रामीण परिवेश के कुल 32 राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों से 320 विद्यार्थियों (160 छात्र एवं 160 छात्राएँ) को स्तरीकृत यादृच्छिक विधि द्वारा चयनित किया गया। विद्यार्थियों की सृजनशीलता मापने के लिए मानकीकृत बॉकर मेहदी द्वारा निर्मित सृजनशीलता चिन्तन का शाब्दिक परीक्षण ***(TCW)*** *एवं शैक्षिक निष्पत्ति मापने के लिए डॉ. ए0के0सिंह एवं ए0सेन गुप्ता द्वारा निर्मित सामान्य कक्षा–कक्ष निष्पत्ति परीक्षण* ***(GCAT)*** *का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं क्रांन्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया। परिणाम दर्शाते है कि ग्रामीण राजकीय एवं ग्रामीण गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सार्थक अन्तर हैं तथा ग्रामीण गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति ग्रामीण राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों से उच्च हैं। तथा उक्त दोनों विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनशीलता व शैक्षिक निष्पत्ति अति निम्न धनात्मक सह–सम्बन्ध है।*

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है। शिक्षा के विभिन्न अनुशासनों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को अच्छे अवसरो को प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिताओं से गुजरना पड़ता है। छात्रों की तरह छात्राएँ भी अपने कैरियर के प्रति सजग और तत्पर दिखाई देने लगी हैं। विभिन्न प्रतियागिताओं से उन्हें जूझना पड़ता है। सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति के पैमाने पर खरा उतरना उनके लिए भी पहली आवश्यकता हो गई है।

सृजनशीलता मनुष्य के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह विद्यार्थी के बहुआयामी व्यक्तित्त्व की द्योतक है। अनेकों विद्यार्थी सृजनशीलता की प्रतिभा के बल पर

सहायक आचार्य, सौरभ शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,खेड़ा, हिण्डौन सिटी,जिला–करौली(राज0) prerana1212jain@gmail.com

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

जीवन में प्रगति पथ पर चलते है। विद्यालयी शिक्षा प्राप्ति के दौरान ही विद्यार्थियों को सृजनशीलता के विकास के अवसर प्राप्त होते है। यह मनुष्य की प्रतिभा व अंतरंग भावनाओं का इजहार करती है। जिससे बालक की विद्यालयी विषयों में शैक्षिक निष्पत्ति उच्च होती है। या निम्न होती है। अब सवाल उठता है कि सृजनशीलता या सृजनात्मकता एवं शैक्षिक निष्पत्ति क्या है?

पहले हम सृजनशीलता के अर्थ को स्पष्ट करते है सृजनशीलता या सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के क्रियेटिवीटी से बना है। हिन्दी इस शब्द के समान्तर अर्थ उत्पाद रचना, रचनात्मकता सृजन, निर्माण करना शब्द बताये गये है। अथवा अथवा प्रयुक्त होते है। सृजन वह अवधारणा है जिसमें उपलब्ध साधनों से नवीन वस्तु, विचार, अवधारणा, उत्पादन को जन्म दिया जाता है। सृजनात्मकता ज्ञान, सूचना तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन, सूचना निर्माण, नवीन प्रणालियों तथा इन सबकी अभिव्यक्ति सृजनात्मकता के अन्तर्गत आती है।

वर्तमान समय मे जहाँ व्यक्ति के दिन–प्रतिदिन के जीवन में वैयक्तिक भिन्नताएँ दृष्टिगोचर हो रही है आज हर व्यक्ति में सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, शैक्षिक, चारित्रिक, भौगोलिक, लैंगिक आदि विभिन्नताएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। ये विभिन्नताएँ बालक में शैशवावस्था से ही दृष्टिगत होती है लेकिन धीरे–धीरे ये विभिन्नताएँ बाल्यावस्था तक दृढ एवं स्पष्ट हो जाती है। इसलिए वह हर क्षेत्र में अलग–अलग प्रकार की निष्पत्ति या उपलब्धि प्राप्त करता है।

उपलब्धि या निष्पत्ति से तात्पर्य है कि जब बालक विद्यालयी विषयों जैसे गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, हिन्दी या अंग्रेजी आदि में ज्ञान प्राप्त करता है या कौशल का विकास करता है। इसका आकलन एक शैक्षिक वर्ष में परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर शिक्षकों द्वारा करायी गयी शैक्षिक क्रियाओं के आधार पर या दोनों माध्यमों से किया जाता है। उसे शैक्षिक निष्पत्ति या उपलब्धि कहते है।

सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन में **अग्रवाल, कान्ता प्रसाद (1988)** ने अध्ययन में पाया की सभी प्रकार के विद्यार्थियों के शाब्दिक, अशाब्दिक एवं पूर्ण सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर पाया गया है। **पटेल, आर. के. (2002)** ने अध्ययन में पाया की छात्र एवं छात्राओं की वैज्ञानिक सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। **सर्वेश, सतीजा (2010)** ने अध्ययन में पाया की सृजनशीलता के आंकड़ों के संश्लेषण को छोड़कर और समायोजन के सभी मापों में सार्थक सुधार पाया गया **पाल, एस.के. एवं खान, मोहसिना (2005)** ने अध्ययन में पाया की छात्र एवं छात्राओं के प्रतियोगात्मक व्यवहार एवं शैक्षणिक उपलब्धि में धनात्मक सह–सम्बन्ध है **हिमाक्षी भारद्वाज (2010)** ने अध्ययन में पाया की जो विद्यार्थी तनावपूर्ण (व्यक्ति) पारिवारिक वातावरण से आते है, उनकी शैक्षिक उपलब्धि सामान्य पारिवारिक वातावरण के विद्यार्थियों से निम्न पाई गई है।अतः प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति का स्तर कैसा है ?

उद्देश्य

ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श

न्यादर्श हेतु राजस्थान राज्य के चार संभागों से 8 जिले (जयपुर, दौसा, टोंक, नागौर, स0मा0,करौली,कोटा एवं झालावाड़)से ग्रामीण परिवेश के कुल 32 ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों से 320 विद्यार्थियों (160 छात्र एवं 160 छात्राएँ) को स्तरीकृत यादृच्छिक विधि द्वारा चयनित किया गया।

उपकरण

विद्यार्थियों की सृजनशीलता मापने के लिए मानकीकृत बॉकर मेहदी द्वारा निर्मित सृजनशीलता चिन्तन का शाब्दिक परीक्षण (TCW) एवं शैक्षिक निष्पत्ति मापने के लिए डॉ. ए0के0सिंह एवं ए0सेन गुप्ता द्वारा निर्मित सामान्य कक्षा–कक्ष निष्पत्ति परीक्षण (GCAT) का प्रयोग किया गया।

सांख्यकी प्रविधियाँ

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं क्रांन्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

परिणाम एवं विवेचना

प्रदत्तो के विश्लेषण के पश्चात प्राप्त परिणामों को निम्नांकित तालिका 1 व 2 में दर्शाता गया है।

तालिका संख्या 1

ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

सृजनशीलता का विश्लेषण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान अंतर	क्रान्तिक अनुपात
ग्रामीण रा0वि0 के विद्यार्थी	160	67.72	22.37	12.96	4.78
ग्रामीण गैर रा0वि0 के विद्यार्थी	160	80.68	26.00		

मध्यमानों के अंतर की सार्थकता के लिए निकाला गया क्रान्तिक अनुपात का मान 4.78 पाया गया है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए न्यूनतम मान 1.96 और 0.01 स्तर पर सार्थकता के लिए न्यूनतम मान 2.58 हैं। तथा सार्थकता के दोनो मानों से क्रान्तिक अनुपात का मान अधिक है अतः दोनों समूहों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर है अर्थात् पूर्व वर्णित परिकल्पना में ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता में सार्थक अन्तर है, इसलिए परिकल्पना असत्यापित हुई।

तालिका संख्या 2

ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शैक्षिक निष्पत्ति का विश्लेषण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान अंतर	क्रान्तिक अनुपात
ग्रामीण रा0वि0 के विद्यार्थी	160	50.01	17.76	6.96	3.44
ग्रामीण गैर रा0वि0 के विद्यार्थी	160	56.97	18.48		

मध्यमानों के अंतर की सार्थकता के लिए निकाला गया क्रान्तिक अनुपात का मान 3.44 पाया गया है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए न्यूनतम मान 1.96 और 0.01 स्तर पर सार्थकता के लिए न्यूनतम मान 2.58 हैं। तथा सार्थकता के दोनो मानों से क्रान्तिक अनुपात का मान अधिक है अतः दोनों समूहों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर है अर्थात् पूर्व वर्णित परिकल्पना में ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति में सार्थक अन्तर है, इसलिए परिकल्पना असत्यापित हुई।

निष्कर्ष एवं कारण

इसका प्रमुख कारण है कि आज ग्रामीण राजकीय एवं गैर राजकीय विद्यालयों का वातावरण विद्यार्थियों में सृजनात्मक एवं शैक्षिक निष्पत्ति का विकास समान रूप से करता है। लेकिन वर्तमान समय में शिक्षण कौशलों एवं दक्षता द्वारा सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति में असमानता दृष्टिगोचर हो रही है। चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, लैंगिक, श्रेणीगत या फिर परिवेशगत जैसा कि समाचार पत्र–पत्रिका द्वारा सूचना प्रकाशित व प्रसारित हो रही हो या चाहे टेलीविजन रेड़ियों द्वारा हो रही हो। हमें उक्त स्तरों पर सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति में भिन्नता दृष्टिगोचर अवश्य हो रही है। जिसके उत्तरोत्तर विकास के लिए हम सब की जिम्मेदारी है कि हम बालक की सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति के गुणोत्तर विकास में सहभागिता निभाये।

शैक्षिक निहितार्थ

आज भारत में सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति की महत्ती आवश्यकता है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं के द्वारा शिक्षा में संचेतना लाई जा सकती है। शिक्षा के द्वारा सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति का प्रसार सम्भव है।

शोधार्थी द्वारा किये गए शोध की सार्थकता तभी है जब शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत सभी बुद्धिजीवी, अध्यापक एवं समाज के सभी सदस्य उक्त शोध के निष्कर्षो एवं सुझावों का उपयोग कर शिक्षा के क्षेत्र में सृजनशीलता एवं शैक्षिक निष्पत्ति को व्यावहारिक रूप प्रदान करने में अपना योगदान दे।

संदर्भ ग्रंथ–

1. **पारीक, ममता (2003) :** बोध शिक्षा समिति एवं सरकारी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनशीलता, व्यक्तित्व एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन। पीएच. डी. शिक्षा, जयपुर : राजस्थान विश्वविद्यालय।
2. **पल्लवी एवं शुक्ला, संतोष (2006).** उत्तर प्रदेश के हाई स्कूल विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर वातावरण में भिन्नता तथा लिंग के प्रभाव का अध्ययन ! शिक्षा चिन्तन, कानपुर : त्रिमूर्ति संस्थान, वर्ष 5 अंक 19 पेज 33–36.

3. **प्रसाद, ठाकुर (2008) :** विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर के किशोर विद्यार्थियों की सृजनात्मक शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, शिक्षा चिन्तन, कानपुर : त्रिमूर्ति संस्थान, वो –28 (8) पृ. 36–38.

4. **वर्मा, रामकुमार, (2005)** सृजनात्मक कौशलों का शिक्षण में उपयोग, भारतीय आधुनिक शिक्षा, नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी. (23) पृ. 57–71.

5. **पुरोहित, राजेश कुमार (2007).** सृजनात्मकता क्या है? कॉठल शतपत्र 4 (4) पृ. 11–14.

6. **जैन, पारस चन्द (2008).** विद्यालय की समस्याएँ एवं समाधान, शिविरा पत्रिका वर्ष 49 अंक 5 पृ. 14–15.

7. **जैसवार, प्रीति एवं कुमार, दिनेश (2009).** प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालयी दशाओं के प्रभाव का अध्ययन, शिक्षा चिन्तन, कानपुर : त्रिमूर्ती संस्थान, अंक 29 वर्ष 08 पृ. 7–13.

*****

NERI

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

साम्प्रदायिकता–निवारण हेतु सुझाव

डॉ0 देवी प्रसाद श्रीवास्तव

शोध सारांश

यद्यपि वर्तमान समय में धर्म का अधिक महत्व नहीं हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धर्म ने विश्व इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। धर्म के मुख्यतः दो पहलू होते हैं .. आन्तरिक एवं बाह्य। धर्म का आन्तरिक पहलू समन्वयवादी और मानवतावादी होता है। यह आदर्श और शाश्वत होता है। जीवन के समस्त आदर्शो और संस्कृतियों के नैतिक मूल्य इसमें समाहित होते हैं। धर्म के इस पहलू के महत्व को स्वीकार करते हुए डॉ0 लोहिया ने कहा है कि .. 'मुझे ऐसा लगता है कि धर्म सम्प्रदाय के अर्थ में .. हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, इसाई धर्म और फिर हिन्दू धर्म के अन्दर भी वैष्णव धर्म, शैव धर्म वगैरह जो कुछ भी हो सकता है उसका अर्थ सबके लिए व्यापक होना चाहिए, और वह है दरिद्रनारायणवाला जो सबे हित का हो,।

धर्म का बाह्य पहलू एक धर्म विशेष के रीति–रिवाज आचार–विचार, पूजा के ढंग तथा उसके बाह्य आचरण के अन्य तथ्यों से सम्बन्धित होता हैं, यह पहलू पृथकतावादी तथा संकुचित होता है। इस पहलू से ही विभिन्न धर्म–सम्प्रदायों का उद्‌भव होता हैं सम्प्रदाय साम्प्रदायिकता को जन्म देता है। यह उस सीमा तक क्षम्य है जहां तक वह अपने अन्य अनुयायियों की आत्मिक एवं सांस्कृतिक उन्नति में सहायक होती है। साम्प्रदायिकता वहीं दूषित हो जाती है जहां पर वह अपनि सदस्यों के लिए दूसरे की अपेक्षा विशेषाधिकार चाहने लगती हैं। धर्म के बाह्य पहलू ने ही बहुधा दूसरी साम्प्रदायिकता को ही जन्म दिया, जो समाज में विघटन, ईर्ष्या, घृणा व पतन का कारण बनती हे।

धर्म के इसी बाह्य पहलू के कारण भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या उत्पन्न हुई। दोनों धर्मो (हिन्दू व मुसलमान) ने अपनेजीवन को परस्पर भय व आशंका के दायरे में सीमित कर दिया। इसी का परिणाम भारत का विभाजन हैं।

भारत का समाज बहुजातीय समाज है। जब तक इस कटु साम्प्रदायिकता का अन्त नहीं होता तब तक समाज में समता, सम्पन्नता एवं स्थायी शान्ति की स्थापना नहीं

! पी.डी.एफ. जे.एन0वी. यूनिवर्सिटी, जोधपुर, prerana1212jain@gmail.com

हो सकती। इसलिए इस समस्या की समाप्ति के लिए प्रयास निरन्तर निष्ठा के साथ होना चाहिए। आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवाद को ही इस समस्या की समाप्ति का साधन मानते थे। उन्हीं के शब्दों में यह कहना कि हिन्दु–मुस्लिम में समझौता हो सकता है, बिल्कुल गलत हैं। साम्प्रदायिकता के जहर को नष्ट करने के लिए साम्यवाद ही एक उपचार हैं[1]।

समाजवाद का धर्म इत्यादि से कोई सम्बन्ध नहीं, पण्डित नेहरू ने श्रीमती प्रेमा बहन को एक पत्र में लिखा था – ''मेरी राय में धर्म, विवाह अथवा नैतिकता की बातों को इससे सम्बद्ध करना बेहूदापन है। कानून, सदाचार और धर्म सामान्य जनता के लिए पूंजीपतियों की रूढ़िगत भावनाएं हैं जिनके आधार पर उनके स्वार्थो की पूर्ति होती हैं। धर्म के बाह्य रूप के माध्यम से संकीर्णता में वृद्धि होती है। भूतकाल में जो संकीर्णता थी उसी का परिणाम साम्प्रदायिकता है। परन्तु आज की साम्प्रदायिकता पूर्णतया धर्मिक स्वरूप लिये हुए नहीं हैं बल्कि इसमें कई तत्त्व सक्रिय रहते हैं। नेहरू जी के शब्दों मे'' मेरा यह विचार है कि भारत में जो साम्प्रदायिक आन्दोलन है वह पूर्णतया धार्मिक नहीं है। इसमें कोई शंका करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ समय पहले यह धार्मिक शोषण था, आज वह पूर्णतया राजनैतिक स्वरूप लिये हुए है। इसे हम आर्थिक भी कह सकते हैं, क्योंकि राजनीतिक समस्याओं का प्रादुर्भाव मध्यम वर्ग की बेरोजगारी से साम्प्रदायिक आन्दोलन में सहयोग और वृद्धि होती हैं[2]। नेहरू जी के इस तर्क से यही अर्थ निकलता है कि यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर दी जाय तो शायद यह समस्या सुलझा सकती है। नेहरू ने अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में लिखा हैं कि–''हिन्दुस्तान का समस्त इतिहास .. प्रोत्साहन का साक्षी रहा है[3]।'' लेकिन आज इस समाज में सहयोग के स्थान पर संघर्ष का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। नेहरू जी ने कांग्रेस के ऊपर संकेत करते हुए लिखा था कि .. कांग्रेस तथा दूसरी संस्थाओं ने विभिन्न वर्गो की स्वीकृति से इस समस्या को हल करने का बार–बार प्रयास किया। कुछ थोड़ी–सी सफलता भी मिली। वास्तव में साम्प्रदायिकता की समस्या मूलतः साम्प्रदायिकता की समस्या नहीं है, बल्कि निहित स्वार्थो का संघर्ष है, इस सम्बन्ध में नेहरू जी ने कहा था कि – मैं व्यक्तिगत रूप से सोचता हूं कि यह जो साम्प्रदायवादी जो राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए बढ़ावा

[1]आचार्य, नरेन्द्र देव, राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 115
[2]नेहरूज, सेलेक्टेड वर्क्स, वाल्यूम, पृ0 107–08
[3]एन0बी0सेन, विट एण्ड विज़डम आफ नेहरू, पृ0 155

देते हैं। सच्ची साम्प्रदायिकता एक भय और झूठी साम्प्रदायिकता एक राजनैतिक प्रतिक्रिया हैं[4]।

नेहरू संस्कारतः आधुनिक थे। धर्म से उन्हें विशेष लगाव नहीं था। 'मुझे धर्म की अलगाव और सैद्धान्तिक विचारधारा से कोई लगाव नहीं है और मुझे खुशी होती है कि यह आजकल कमजोर होता जा रहा है। मै साम्प्रदायिकता के किसी भी रूप को स्वीकार नहीं करता हूँ[5]।' नेहरू जी ने इस समस्या के उन कारणों के ऊपर गंभीर आघात किया जिसके माध्यम से यह समस्या जटिल बनती जा रही है। ब्रिटिश सरकार ने भी अंशिक रूप में इस समस्या को जन्म दिया। परन्तु हमें उन कारणों तथा उन व्यक्तियों को हतोत्साहित करना चाहिए जो इसके विकास में सहायक होते हैं[6]। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि साम्प्रदायिकता की समस्या केवल वर्तमान तक ही सीमित है। यह हमारे समक्ष पनप रही है। हमें इससे अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए। यह भावी प्रगति में बाधक अवश्य बनेगी। यदि इसको समाप्त नहीं किया गया तो भविष्य में ऐसी विचारधारा को जन्म देगी जो राष्ट्र के लिए बहुत ही हानिकारक सिद्ध होगी[7]।

आधुनिक समय में गांधी जी ने प्रथम बार इस समस्या को अपने हाथ में लिया और अपनी नीति के अनुसार उसका समाधान प्रस्तुत किया। गांधी जी और नेहरू में इस सम्बन्ध में कुछ मतभेद हैं। दोनों की साम्प्रदायिक एकता के प्रबल समर्थक हैं लेकिन समाधान के सम्बन्ध में दोनों में काफी भिन्नता है। गांधी जी जहां तक हो सके, एक–दूसरे के धर्मो की जानकारी सहिष्णुता एवं एक दूसरे के लिए सच्चा आदर्श और आध्यात्मिकता की नींव पर हल करना चाहिए। गांधी जी का दृष्टिकोण गुरू नानक एवं कबीर के समान था, जबकि नेहरू का धर्म को अलग रख कर आधुनिक युग के भौतिकवादी पाश्चात्य अर्थशास्त्री का दृष्टिकोण था। जिस बात ने गांधी जी को इस ओर झुकाया कि वह नेहरू को अपना उत्तराधिकारी घोषित करें वह यह भी था कि नेहरू जी अपनी घरेलू परिस्थिति, शिक्षा स्वभाव तीनों से एक प्रकार की संकीर्णता से ऊपर थे, जैसे धार्मिक संकीर्णता,

---

नेहरू सेलेक्टेड वर्क्स, वाल्यूम 6, पृ0 159

एन0पी0 सेन विट एण्ड विज़डम ऑफ नेहरू, पृ0 155

[6] वही, पृ0 131

[7] लेटर टु द लार्ड लोथिन, 17 जनवरी, 1936

जातिगत संकीर्णता व साम्प्रदायिक संकीर्णता। यह बात अलग हे कि गांधी जी की तकनीक और उनकी तकनीक में गहरा अन्तर है।

साम्प्रदायिकता की समस्या केवल समाज और राष्ट्र को ही प्रभावित नहीं करती वरन् व्यक्ति को भी प्रभावित करती हैं और दोनों के लिए हानिकारक हैं। अलग निर्वाचक मण्डल के सम्बन्ध में नेहरू का विचार है कि किसी भी सामान्य व्यक्तियों की सभा में अधिक स्थान देकर अल्प संस्थाओं को बहुमत–संख्यक नहीं बनाया जा सकता हैं। वास्तव में पृथक निर्वाचिका संरक्षित समुदाय के लिए स्थिति कुछ खराब हो गयी, क्योंकि बहुसंख्यकों ने उनमें रूचि लेना छोड़ दिया। उस समय आपसी सोच–विचार का बहुत कम समय था। कांग्रेस ने घोषणा की कि किसी ऐसे मामले पर जिसका अल्पसंख्यकों के विशेष हितों से सम्बन्ध हो, अगर बहुसंख्यकों और धार्मिक अल्पसंख्यकों में मतभेद हुआ तो उसका निर्णय बहुसंख्यक वोटों से नहीं होगा बल्कि वह मामला एक निष्पक्ष न्यायालय को या आवश्यकता पड़ने पर अन्तर्राष्ट्रीय पंच को सौंपा जाना चाहिए। एक बार पृथक निर्वाचन आरंभ कर देने के बाद बंटवारे और हिस्से का और उसमें पैदा हुई कठिनाइयों का कोई अन्त नहीं होता। स्पष्ट हैं कि किसी समुदाय को अधिक प्रतिनिधित्व देने के यह अर्थ हैं कि दूसरे समुदायों को घाटा रहें[8]।

कांग्रेस ने बहुत–सी गलतियां की लेकिन यह अपेक्षाकृत छोटे सवालों या प्रयत्न के ढंग में थी। यह बात स्पष्ट है कि कांग्रेस ने राजनीतिक साधनों से साम्प्रदायिक हल निकालने का प्रयास किया और इस प्रकार उन्नति के रास्तों की बाधाओं को दूर करना चाहती थी। विशुद्ध साम्प्रदायिक संस्थाओं में ऐसी कोई उत्सुकता नहीं थी, क्योंकि उनके अस्तित्व का कि वे अपने–अपने समुदायों की समस्याओं पर जोर दें और इसका यह परिणाम निकला कि समस्त ढांचे को बनाये रखने में उनका एक निहित स्वार्थ हो गया।

नेहरू जी मूलतः यथार्थतावादी नेता थे। प्रत्येक समस्या के समाधान के सम्बन्ध में भी वह यथार्थवादी तर्क ही प्रस्तुत करते थे। नेहरू जी किसी भी वास्तविकता को कहने में संकोच नहीं करते थे। जब वह एक समाजवादी के विचार व्यक्त करते हैं कि समाजवाद विश्व की तथा भारत की सभी समस्याओं का समाधान कर सकता है जब वह इस प्रकार

[8] नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ0 238

के शब्द प्रयोग करते हैं तब वह एक मानववादी के समान नहीं बल्कि वैज्ञानिक, आर्थिक चिन्तक के समान विचार व्यक्त करते हैं[9]।

यह समस्या भी जातिप्रथा के समान एक जटिल समस्या हैं। यह राष्ट्रीय एकता के विकास में बाधक बन जाती हैं। नेहरू जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि शासन को सही रूप में चलाने के लिए तथा राष्ट्रीय एकता के लिए साम्प्रदायिकता को समाप्त करना होगा। विधानमण्डलों में किसी भी प्रकार के साम्प्रदायिक संगठनों को कोई स्थान नहीं दिया जायेगा तथा साम्प्रदायिकता के नाम पर किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा[10]।

इसी विचार को संविधान में रखा गया कि – ''किसी के साथ धार्मिक आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा।'' गांधी जी प्रत्येक वस्तु के पहलू को धार्मिक दृष्टिकोण से देखते थे। इसके सम्बन्ध में नेहरू का मत है कि – ''हम जो राजनीति और नैतिकता के सम्मिलन की चर्चा करते हैं, या इसके सम्बन्ध में मुझे जो कुछ भी जानकारी गांधी जी ने धर्म के आधार पर राजनीति का स्तर खड़ा किया'' राजनीति और आर्थिक योजनाओं में कभी भी धर्म को स्थान नहीं देना चाहिए[11]।

नेहरू जी का तर्क बहुत कुछ सीमा तक सही है, क्योंकि धर्म और राजनीति का सम्मिश्रण जब भी हुआ एक नवीन प्रकार के संघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रमाण मध्ययुग के इतिहास में काफी मात्रा में मिल जाते हैं। लेकिन गांधी जी की धर्म की अवधारणा एक उच्च्य प्रकार की थी, जो जन साधारण की समझ के बाहर की वस्तु हैं। नेहरू जी ने इस समस्या के सम्बन्ध में जो कुछ भी तर्क तथा नीतियां प्रस्तुत की, वह संतोषजनक नहीं है। नेहरू जी एक कुशल राजनीतिज्ञ थे। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहते थे जिससे जनता उनके विरूद्ध हो जाय, यह उनकी प्रकृति का सबसे बड़ा गुण था। डॉ0 लोहिया ने इस समस्या के निराकरण के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन तथा सुझाव रखे हैं। डॉ0 लोहिया के अनुसार पांच प्रकार के प्रयास इस दिशा में किये जा सकते हैं :–

1) ह्रदय परिवर्तन,
2) इतिहास की सही व्याख्या,
3) राजनीति में सुधार,

---

[9] हिरेन मुकर्जी, ए स्टडी ऑफ़ नेहरू, पृ0 55
[10] नेहरूज स्पीचेज, वाल्यूम 1, पृ0 77
[11] संविधान सभा में नेहरू का भाषण, 3 अप्रैल, 1948

4) भाषण–सम्बन्धी उदार नीति,

5) धार्मिक प्रयत्न।

साम्प्रदायिकता की समस्या के समाधान हेतु हृदय–परिवर्तन का बहुत अधिक महत्व होता है। स्वतंत्रतापूर्व दोनों समुदायों में काफी संघर्ष हुआ। उस समय यह समस्या अपनी चरम सीमा पर थी। इस समय गांधी जी और डॉ0 लोहिया ने ह्रदय परिवर्तन के प्रयास किये। हिन्दू–मुसलिम एकता का कार्यक्रम ही उस समय डॉ0 लोहिया का मुख्य विषय था। कलकत्ते में उन्होंने अपने साथियों के साथ 'गण फौज' नामक स्वयं सेवक संगठन भी बनाया। काशीपुर में एक राहत केन्द्र भी खोला[12]। यद्यपि उस भीषण स्थिति में उन्हें आंशिक सफलता ही मिली। लेकिन इस तर्क से विमुख नहीं हुआ जा सकता कि सामान्य स्थिति में हृदय–परिवर्तन के प्रयास बहुत ही प्रभावशाली होते हैं। डॉ0 लोहिया ने न्याय, उदारता और दृढ़ता से हिन्दू और मुसलमान के आपसी वैमनस्य के कारणों को ढूढ़ने तथा उनका समाधान करने की प्रेरण दी, उन्होंने कहा था कि .. हिन्दुस्तान के मुसलमानों को सच्चे दिल से देशभक्त बनना चाहिए, और उन्हें भक्त बनने के लिए मन बदलना होगा। दोनों हिन्दू का भी और मुसलमान का भी[13]। डॉ0 लोहिया के अनुसार मुसलमानों के हृदय परिवर्तन और उनसे साम्प्रदायिकता की भावना को समाप्त करने के लिए इतिहास–लिखित तरीके से व्याख्या अनिवार्य हैं। डॉ0 लोहिया ने इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन और विवेचना करके यह स्पष्ट किया कि इतिहास हिन्दू–मुसलमान की एकता से परिपूर्ण हैं। उसमें कहीं कोई साम्प्रदायिकता नहीं हैं। इतिहास पर सही दृष्टि रख कर ही हम सत्य समझ सकते हैं कि पिछले 600 से 800 वर्ष के युद्धों में मुसलमानों ने हिन्दुओं को ही नहीं वरन् विदेशी मुसलमानों ने देशी मुसलमानों को भी समाप्त किया। इस तरह से हिन्दुस्तान का इतिहास पढ़ना होगा[14]। हिन्दू–मुसलमान को इस तथ्य से परिचित कराने के लिए डॉ0 लोहिया की योजना थी कि प्रत्येक बच्चे को सिखाया जाय, हर एक स्कूल में घर–घर में क्या हिन्दू, क्या मुसलमान बच्ची–बच्चे को कि रजिया, शेरशाह, जायसी वगैरह हम सब के पूर्वज हैं, हिन्दू मुसलमान दोनों के .. लेकिन इसके साथ–साथ में चाहता हूं कि हमसे प्रत्येक आदमी क्या हिन्दू क्या मुसलमान यह कहना सीख जाय कि गजनी,गोरी तथा

[12] ओंकार शरद, लोहिया, पृ0 187
[13] डॉ0 लोहिया, वशिष्ट ओर वाल्मीकि, पृ0 9
[14] वही, पृ0 6

बाबर लुटेरे थे और हमलावर थे[15]। केवल तब ही दोनों सम्प्रदाय विदेशी और आक्रामक के प्रति घृणा तथा देशी और देशभक्त के प्रति सहानुभूति रख कर एकता के सूत्र में बंध सकेंगे।

यदि डॉ0 लोहिया के सुझाव के ग्रहण कर लिया जाय तो दोनों सम्प्रदायों के आपसी मानसिक संघर्ष की संभावना बहुत कुछ कम हो सकती है तथा पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति बढ़ सकती हैं। डॉ0 लोहिया साम्प्रदायिकता का अन्त करने के लिए आधुनिक राजनीति में परिवर्तन चाहते थे। इस तथ्य में डॉ0 लोहिया और नेहरू जी में काफी सभ्यता है। दोनों विचारक वर्तमान राजनीति को साम्प्रदायिकता की भावना के प्रसार का कारण समझते थे। डॉ0 लोहिया ने जीवन के प्रत्येक पहलू में हिन्दू बनाम मुसलमान के स्थान पर हिन्दू और मुसलमान का सिद्धान्त स्थापित किया। वे राजनीति को हिन्दू बनाम मुसलमान के रूप में देखना काफी हानिप्रद समझते थे। उनका विचार हैं कि मुसलमान जैसी चीज नहीं रहनी चाहिए, राजनीति में टूट जाना चाहिए, जैसे हिन्दू टूटते हैं अलग–अलग पार्टियों में, वैसे मुसलमानों को भी टूट जाना चाहिए[16]। डॉ0 लोहिया ने बड़े दुःख के साथ कहा था कि जहां तक मुसलमान से बन पड़ा है, वह हमेश हमेशा एक टुकड़ी में चला है, आज भी वह लगभग एक साथ जाता हैं। हमेशा कोई–न कोई इत्तेहाद बनाता है। इसलिए उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक साथ चलने, जगह–जगह समता का प्रचार करने और सम्पूर्ण देश में एकता की भावना का प्रचार करने के लिए प्रचार किया। जब व्यक्ति हिन्दू मुसलमान की हैसियत से इकट्ठा नहीं होंगे बल्कि अपनी नजर से कि हमें कौन–सी राजनीति करनी हैं[17]।

डॉ0 लोहिया साम्प्रदायिकता की समाप्ति के लिए भाषा में भी सुधार करना चाहते हैं। हिन्दू के नाम स मुसलमानों को भय हो सकता है कि शायद उनकी भाषा उर्दू की उपेक्षा की जा रही है, इसके लिए डॉ0 लोहिया ने स्पष्ट कहा है कि उर्दू जबान हिन्दुस्तान की जबान है और उसका वही रूतबा होना चाहिए जो हिन्दुस्तान की किसी जबान का[18]। डॉ0 लोहिया का कहना था कि यदि फिर से देश एक हुआ तो उसकी भाषा

[15] डॉ0 लोहिया, हिन्दू और मुसलमान, पृ0 3
[16] डॉ0 लोहिया के हैदराबाद 3 अक्टूबर, 1963 के भाषण से।
[17] वही,
[18] डॉ0 लोहिया, भाषा, पृ0 6

चालू भाषा होगी, जो कि पाली और संस्कृत की औलाद, हैं, लेकिन वह अपभ्रंश पाली, जो जनता में टूट–टाट गयी। अपभ्रंग में तो फारसी के शब्द भी आ गये हैं। अरबी के भी आ गये हैं[19]। डॉ0 लोहिया के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता समन्वयवादी प्रकृति है। उसी प्रकार उनकी भाषा भी।

डॉ0 लोहिया का मत हैं कि साम्प्रदायिकता समाप्त करने के लिए धार्मिक अनुदारवादिता का अन्त होना चाहिए, हिन्दू, मुसलिम एकता के लिए धर्म का वाह्य पहलू एक बहुत बड़ी खाई के रूप में सामने आता है। गांधी जी चाहते थे कि हिन्दू–मुसलमान एकता के आदर्श को चरितार्थ करें। हिन्दू–मुसलमान की पूर्व एकता का गांधीवादी सिद्धान्त डॉ0 लोहिया की दृष्टि में आंशिक ढंग से ही व्यावहारिक हैं। इसी तथ्य से आभास होता है कि डॉ0 लोहिया और नेहरू में कितना मौलिक अंतर हैं। डॉ0 लोहिया सैद्धातिक क्षेत्र में गांधी जी के जितने अधिक निकट थे, नेहरू उतने ही दूर। डॉ0 लोहिया – ''कि हिन्दू कितना ही उदार क्यों न हो जाय किन्तु राम और कृष्ण को मोहम्मद से कुछ थोड़ा अच्छा समझेगा और मुसलमान भी चाहे जितना उदार हो जाये अपने मोहम्मद की राम और कृष्ण से अधिक आदर देगा। यदि 19–20 से ज्यादा फर्क न हो तो दोनों का मन ठीक हो सकता है[20]।

डॉ0 लोहिया ने साम्प्रदायिकता की समाप्ति का प्रश्न तो उठाया ही, साथ ही साथ हिन्दू–पाक की एकता का भी प्रस्ताव रखा। वे विभाजन के कड़े विरोधी थे। इसके तत्वों पर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने कहा कि – ''मैं गांधी जी पर इल्जाम लगाने वालों में नहीं हूं, देश के बंटवारे के लिए जिस तरह श्री जिन्ना श्री नेहरू व पटेल मुख्य रूप से दोषी थे, उस तरह का दोषी में उन्हें नहीं मानता, लेकिन दूसरे नम्बर के दोषी वे भी थे। इसे कोई भी देख सकता है कि मुख्य दोषियों में इतिहास की मिशाल, निर्वैयक्तिक शक्तियां, कन्नौज के विघटन के बाद हिन्दुओं का पतन व हिन्दुस्तान के इस्लाम की अंधी आत्मघाती कट्टरता, ब्रितानी साम्राज्यवाद की आखिरी साजिश और सबसे अधिक समर्पण और समझौते की वह दीन भावना जिसे समन्वय और सहिष्णुता कहा जाता है, जो मुख्य रूप से जाति–व्यवस्था के कारण हैं। उनका विश्वास था कि भारत का विभाजन ही

[19] डॉ0 लोहिया, हिन्दू और मुसलमान, पृ0 7
[20] 3 अक्टूबर सन् 1963 ई0 की हैदराबाद में दिये गये डॉ0 लोहिया के भाषण से।

इसलिए हुआ कि भारत का इतिहास ही विदेशी विचारकों द्वारा लिखा हुआ था और भारतीयों ने उसे अधिक प्रामाणिक माना।

डॉ0 लोहिया ने भारत के विभाजन को कभी भी वास्तविक नहीं माना। सन् 1950 ई0 में फ्रैगमेन्ट्स आफ वर्ल्ड माइन्ड में डॉ0 लोहिया ने स्पस्ट लिखा है कि इन दोनों राज्यों में इतनी अधिक संख्या में हिन्दू और मुसलमान बसे हुई हैं कि भारत–पाक रिश्ते को विदेशी–नीति के स्तर पर समझना बिल्कुल असंभव हैं। यहकहना कि पाकिस्तान में जो भी घटना घटे वह पाक का अन्दरूनी मामला है और भारत को इस सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और यही बात भारत के साथ भी उतनी ही लागू होती हैं। इन दो भूखण्डों में स्थित जनसमूह के सम्बन्धों को नकारना होगा। .. भारत में स्थित अल्पंसख्यकों के प्रति अगर कोई गलत व्यवहार होता हे तो पाकिस्तान का वह उतना ही मामला बन जाता है जितना पाकिस्तान में स्थित अल्पसंख्यकों के प्रति भारत का[21]। डॉ0 लोहिया ने हिन्द–पाक महासंघ की कल्पना की थी। इस प्रकार का कोई विचार नेहरू जी एवं जे0पी0 ने नहीं रखा। उनके मत में महासंघ की स्थापना के बिना काश्मीर तथा अन्य समस्या का समाधान निरर्थक होगा। इसकी अनुपस्थिति में कोई न कोई समस्या अवश्य होती इसलिए महासंघ की स्थापना द्वारा ही प्रत्येक समस्या का हल किया जा सकता है। और बेहिचक किया जाना चाहिए[22]। डॉ0 लोहिया ने महासंघ की रूपरेखा भी तैयार की थी। इस रूपरेखा के अनुसार महासंघ की पांच इकाइयां होंगी। बंगाल, कश्मीर, पख्तूनिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान। इसमें निवास करने वाले नागरिकों की नागरिकता एक होगी। उसकी विदेशी नीति भी एक होगी। यातायात और सैनिक नीति पर भी संघ का अधिकार होगा[23]। हिन्दू और मुसलमान में, दोनों में या तो राष्ट्रपति बनेगा या प्रधानमंत्री यद्यपि सदैव के लिए ऐसा संविधान में लिखा जाना अनिवार्य नहीं हैं[24]। महासंघ के निर्माण की कुछ साधन भी डॉ0 लोहिया ने रखे। उनके अनुसार दोनों देशों की सरकारें इसमें बाधा उत्पन्न करती हैं। इसीलिए दोनों देशों की सरकारों को जनता को बदलना चाहिए – क्योंकि ये

[21] साप्ताहिक दिनमान, 12 अक्टूबर, सन् 1969 पृ0 32
[22] डॉ0 लोहिया, भारत, चीन और उत्तरी सीमाएं, पृ0 324
[23] वही, पृ0 324
[24] डॉ0 लोहिया, आज़ाद हिन्दुस्तान में नये रुझान, पृ0 9

शक्तियां ही दोनों देशों को संघर्ष के लिए प्रोत्साहित करती है[25]। इसीलिए हिन्दू और मुसलमानों को त्याग के लिए तत्पर रहना चाहिए। डॉ0 लोहिया द्वारा प्रस्तावित साधन वास्तव में एक आदर्श रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इन साधनों के लिए भी जबतक ठोस साधन न हों तबतक महासंघ एक कल्पना रहेगा।

जे0पी0 भी साम्प्रदायिकता की समस्या को बहुत ही घृणा की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने इसके समाधान के लिए जनसाधारण के सहयोग का विचार रखा। उनका कहना था कि .. साम्प्रदायिकता का अन्त सिर्फ सरकार को ही नहीं करना है। आप लोगों का भी इसमें कोई कर्त्तव्य हैं। यथार्थवाद तो यह है कि साम्प्रदायिकता आप ही मिटा सकते हैं। आप में से एक–एक का यह धर्म होना चाहिए कि जहां भी साम्प्रदायिकता देखिए उसका सर कुचल दीजिए[26]।

यह एक सामाजिक विकार है, इसे पूर्णरूपेण समाप्त करने के लिए या इस पर नियंत्रण करने के लिए समाज के आधार में चारित्रिक परिवर्तन करना होगा[27]। जे0पी0 भी डॉ0 लोहिया तथा नेहरू जी के समान (कम्यूनल अवार्ड) के कड़े आलोचक हैं। उनका विचार हैं कि यह एक प्रकार की विरोधी प्रवृत्ति को जन्म देने वाली नीति थी जिसने हिन्दू और मुसलमान तथा हिन्दुओं में भी ऊंच–नीच की भावना पैदा की[28]।

साम्प्रदायिकता के आधार पर जो विधानसभाओं में अलग निर्वाचिका की व्यवस्था की गयी थी उसको जे0पी0 भी नेहरू व डॉ0 लोहिया के समान एक गलत कदम समझते थे। इस सम्बन्ध में उनका मत है कि .. विधानसभाओं में जो साम्प्रदायिकता के आधार पर सीटों की व्यवस्था की गयी है इसमें जनसामान्य की कोई रूचि नहीं थी। इसको उठाने वाले कुछ साम्प्रदायिक नेता थे जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिकता का प्रश्रय लेते थे। आज जो हिन्दू और मुस्लिम सर्वहारा वर्ग है वह साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं करता[29]।

[25] डॉ0 लोहिया, समाजवादी चिन्तन, पृ0 91
[26] रामवृक्ष बेनीपुरी? जयप्रकाश की विचारधारा, पृ0 302
[27] जयप्रकाश नारायण, टुवंडर्स स्ट्रगल, पृ0 149
[28] जयप्रकाश नारायण, नेशन बिल्डिंग इन इण्डिया, पृ0 194
[29] वही, पृ0 196

जे0पी0 भी इस समस्या को आर्थिक दृष्टि से देखते हैं। यहां पर जे0पी0 एक सामाजिक सुधारक के समान समस्या का समाधान रखते हैं तथा आर्थिक विश्लेषण भी करते हैं। उनका मत हैं कि साम्प्रदायिक समस्या अधिकांशतः एक आर्थिक प्रश्न है। जो उत्पन्न हुआ हैं इस कारण से कि लगभग सभी किसान मुसलमान हैं तथा जमींदार हिन्दू हैं..। लेकिन चूंकि यह वर्ग विभेद साम्प्रदायिक विभेद के समान ही घटित होता है इसलिए इन झगड़ों को साम्प्रदायिक रंग दिया जाता है, यह सबकों विदित है कि जन–साधारण में मजहबी जुनून और आर्थिक क्रान्तिवाद साथ–साथ चलते हैं[30]।

जे0पी0 साम्प्रदायिकता के समाधान के लिए आर्थिक समानता का विचार रखते हैं। जहां भी वर्ण और सम्प्रदाय के भेद साथ–साथ घटित होने के बजाय एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं, वहां साम्प्रदायिक प्रश्न समाज के उच्च स्तर तक ही सीमित रहता हैं। उन्हीं व्यक्तियों तक जो नौकरियों और पदों तथा खिताबों के भूखे रहते हैं। सम्पूर्ण समुदाय कभी भी इस समस्या का साझीदार नहीं बनता। जे0पी0 इस समस्या को सहयोग के आधार पर समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने कहा है कि हिंसा का प्रतिकार नहीं हो सकता। यदि एक वर्ग हिंसा करता है तो उसका जवाब हिंसा से नहीं देना चाहिए। इससे संघर्ष अधिक बढ़ेगा, बल्कि दोनों समुदायों में सहयोग पैदा करना चाहिए। तब ही समस्या का समाधान हो सकता है[31]। जे0पी0 ने स्वतंत्रता–संग्राम के समय, जब यह समस्या अपनी चरम सीमा पर थी, तब इसकी ओर संकेत करते हुए लिखा था कि – यदि हमने जनहित का प्रोग्राम अपनाया होता, यदि हमने उनके आर्थिक उद्धार के हित में भाग लिया होता तो उनका समर्थन प्राप्त करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होती। वह हमारे पीछे होते। जब हम ऐसा करेंगे साम्प्रदायिक समाप्त हो जाएगी,क्योंकि जनता में सभी सम्प्रदाय हैं[32]। जे0पी0 धारा सभाओं को साम्प्रदायिकता की समस्या का मूल कारण समझते थे। भारतीय राजनीति भी कुछ अंश में इस समस्या के लिए जिम्मेदार है। यदि इस समस्या को समाप्त करना है तो धारा सभाओं की जगह के झगड़ों से बिल्कुल हाथ खींच लिया जाय तथा जनता के आर्थिक संघर्षो को कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय।

---

[30] जयप्रकाश नारायण, संघष्र की ओर पृ0 120
[31] जयप्रकाश नारायण, संघर्ष की ओर, पृ0 123
[32] वही, पृ0 123

साम्प्रदायिकता के प्रश्न को समाप्त करने के लिए जितने स्पष्ट और आदर्शवादी साधन जनसामान्य के समक्ष डॉ0 लोहिया ने रखे उतने स्पष्ट साधन नेहरू एवं जे0पी0 प्रतिपादित नहीं किये। नेहरू वैधानिक प्रक्रिया में आस्था रखते थे। वह प्रत्येक समस्या को चाहे सामाजिक हो अथाव अन्य समस्या हो, वैधानिक साधनों के अलावा वह और किसी में आस्था नहीं रखते थे। जबकि डॉ0 लोहिया सामाजिक सुधारक के समान समस्या का समाधान प्रस्तुत करते थे।

वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तीव्रता पर है, सामाजिक आर्थिक राजनीतिक मूल्यों में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, जन सामान्य नये सामाजिक जीवन और व्यवहार के लिए पुरानी मान्यताओं को समाप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। वर्तमान समय में भौतिकता की प्रवृत्ति बराबर बढ़ती जा रही है। इसका परिणाम यह निकलता है कि व्यक्ति धार्मिक क्रियाओं से विमुख होता जा रहा हैं और धार्मिक संकीर्णता की प्रवृत्ति भी कम होती जा रही है। यही संकीर्णता समस्या कों जन्म देती हैं। यदि नेहरू जी एवंजे0पी0 के अनुसार इन समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो जाय तो साम्प्रदायिकता की समाप्ति में बहुत कुछ सहायता मिल सकती हैं।

*****

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

विद्यार्थियों के आत्ममान पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव

डॉ. अनिल कुमार श्रीवास्तव[1] सुशीला सिंह[2]

शोध सारांश

बालक के विकास में परिवार के वातावरण का विशे ा महत्व होता है। बालक में संस्कारों, सदाचारो एवं मूल्यों के विकास तथा बालक में स्वयं के प्रति विश्वास (आत्म–विश्वास) विकसित करने का आधार उसका पारिवारिक वातावरण है। परिवार के सामाजिक, आर्थिक एवं ौक्षिक वातावरण का बालक के मन पर विशे ा प्रभाव पड़ता है। माता–पिता में मधुर सम्बन्ध न होने पर बालक में अच्छे गुणों का विकास नही होता है। इस तरह का सम्बन्ध बालक के मानसिक विकास को अधिक प्रभावित करता हे। जिसके कारण वह अपने अन्दर आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं कर पाता है।

आत्ममान व्यक्ति का वह गुण है जिसके द्वारा वह किसी कार्य को सम्पादित करने में स्वयं की क्षमता का अनुभव करता है। आत्मान विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यवहार, विचार, भावनाओं, मूल्यों, एवं अभिवृत्तियों पर प्रभाव डालता है। आत्ममान व्यक्ति की वातयावस्था किशोरावस्था एवं युवावस्था में भी होता है संगठनात्मक मनोविज्ञान एवं औद्योगिक मनोविज्ञान में हुए अनुसंधान कार्यों में बताया गया कि आत्ममान पर पारिवारिक वातावरण, विद्यालयी वातावरण, अभिभावक प्रोत्साहन एवं सामाजिक वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह सम्प्रत्यय बालक के दैनिक जीवन में विशे ा भूमिका निभाता है।

पारिवारिक वातावरण बालक के व्यक्तित्व का आधार होता हैं जिसमें बालक अपने अभिभावक एवं परिवार के अन्य सदस्यों के समूहों में अपना व्यवहार निर्धारित करता है। पारिवारिक वातावरण स्वस्थ्य होने पर बालक का सर्वागीण विकास उचित ढंग से होता है। देखा जाता है कि अधिकांश परिवारो का वातावरण स्वस्थ्य नहीं रहता । माता–पिता छोटी–सी बात को लेकर झगडते रहते है। परिवार के लोगो का रहन–सहन उनकी आदते बोल–चाल का तरीका, अभिवृत्ति, आकांक्षाएँ आदि बालक के विकास को काफी हद तक प्रभावित करती है। जिसके कारण बालकों का दैनिक जीवन प्रभावित होता है। यदि ये

अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, महाराजा सूरजमल बृजविश्वविद्यालय,, prerana1212jain@gmail.com
प्राचार्य, महाराजा सूरजमल टी.टी. कॉलेज, भरतपुर

सभी कारण सकारात्मक हों तो बालक के व्यवहार को सकारात्मक बनाया जा सकता हैं

इसी प्रकार आत्ममान भी एक ऐसा व्यावहारिक एवं व्यक्तिगत सम्प्रत्यय है जो बालक या व्यक्ति की स्वयं की योग्यता के प्रति चिन्तन एवं योग्यता तथा स्वयं की सफलता और असफलता के प्रति आत्मविश्वास है। स्वस्थ आत्म विश्वास का सम्बन्ध व्यक्ति की सृजनात्मकता, आत्मनिर्भरता और योग्यता से है। इसलिए बालक की शिक्षा में आत्ममान की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह जीवन की आवश्यकता के अनुरूप व्यक्ति की उपयुक्तता को प्रदर्शित करता है।

मॉस्लो के अनुसार :– ''मानव की आवश्यकताओं के क्रम कमें आत्ममान की आवश्कता स्वयं की वास्तविकता से पहले आती है।'' इस प्रकार आत्ममान विद्यार्थी के व्यवहार प्र प्रभाव डालता है।

यदि विद्यार्थी के परिवार का वातावरण आदर्श होता है उसके माता–पिता जैसी विचार धारा वाले होते है। बच्चों में भी वैसी ही विचारधारा पायी जाती है। अतः माता–पिता के विचारो का बच्चों पर प्रभाव पड़ता है।

ऐसे माता–पिता जो बच्चों के साथ अवास्तविक महत्वकांक्षाएँ रखते है वे उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न कर देते हैं इसी भावना से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास प्रभावित होता है।

वातावरण में माता–पिता की बच्चों के प्रति जो अभिवृत्तियाँ होती हैं वे इस तथ्य का निर्धारण करने में सहायता करती है। कि बालक अपना समायोजन किस प्रकार से करेगा। बालक के स्वयं प्रति विश्वास पर उसके माता–पिता की अभिवृत्तियों का विशे ा प्रभाव पड़ता है। वे दो ापूर्ण अभिवृत्तियाँ जिनका प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व व उनके आत्ममान पर पड़ता है। निम्नलिखित हैः–

अतिसंरक्षण :– माता–पिता व परिवार जनों द्वारा अतिसंरक्षण व लाड़–प्यार मिलने पर बालक में दूसरों पर निर्भरता बढ़ जाती है उसमें बेचैनी, उत्तेजना, ाीघ्र परेशान होना, ध्यान लगाने की कम योग्यता, अपनी योग्यता पर विश्वास न होना आदि लक्षण दिखाई देते है। जिससे बालक के आत्मविश्वास में कमी आ जाती है।

अत्यधिक छूट या इच्छा पूर्ति :– (डब्ल्यू बीरोसन 1970) एक अध्ययन (सीयस–1961) में पाया कि माता–पिता जिल बच्चों को अधिक छूट देते है तथा सजा बहुत कम देते है तो ऐसे बालक समाज विरोधी और आक्रामक व्यवहार वाले हो जाते है।

स्वीकारोक्ति :– यह वह प्रवृत्ति है जब माता–पिता में प्रेम–दया सहानुभूति दयालुता, बुद्धिमता, संयमी, परिणामी तथा प्रजातांत्रिक गुण पाये जाते है। इस प्रवृति वाले माता–पिता के बच्चे संवेगात्मक रूप से स्थिर मैजीपूर्ण सहयोगी, दयालुता तथा सामाजिक आदि गुणों से युक्त होते है।

तिरस्कार :– माता–पिता का अत्यधिक तिरस्कार बालकों में आक्रामक निर्दयता, झूठ बोलने की प्रवृति–कुसमायोजन, असहायता की भावनास अधिक दिखाता करने की प्रवृति आदि लक्षण दिखाई देते है।

अवास्तविक चाह :– कुछ माता–पिता अपने बच्चों से अधिक अपेक्षा रखते है वे चाहते है कि उनके बच्चे प्रत्येक कार्य मे अन्य बच्चों से आगे रहे जैसे पढ़ने में आगे, खेलने में आगे आदि। वे बच्चो की क्षमताओं की ओर ध्यान नही देते है। ऐसे में जब बालक असफल हो जाता है तो जो उसमें कुण्ठा की भावना उत्पन्न हो सकती है।

स्वामित्व अभिवृत्तियाँ :– स्वामित्व अभिवृत्तियों वाले माता–पिता अपने बच्चों से अत्यधिक अनुशासन की आशा रखते है। बच्चों पर कठोर नियंत्रण लगाते है। ऐसे माता–पिता बच्चो की आवश्यकताओ पर ध्यान न देकर मूल्यों पर अधिक महत्व देते है। इससे बालक की इच्छाओं का दमन हो जाता है। जो बालकों के व्यक्तित्व विकास के लिए घातक सिद्ध होता है।

परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर :– परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति अच्छी न होने से उसका प्रभाव बच्चों एवं माता–पिता के साथ पाये जाने वाले सम्बन्धों पर पड़ना स्वाभाविक है। जब परिवार में रहने वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है तो इसका प्रत्यक्ष प्रभाव घर के सम्पूर्ण वातावरण पर पड़ता है। घर का वातावरण अशान्त रहने से छोटी–छोटी बात पर बच्चों को डांट फटकार पड़ती है। इससे बच्चों में आत्मग्लानि उत्पन्न हो सकती है।

मेल्टर ने कहा कि :– माता–पिता एवं बच्चों के सम्बन्धों को पूर्णतः स्थापित करने के लिए आर्थिक सुरक्षा महत्वपूर्ण कारक है।

ISSN NO: 2454-5643
NIMAR EDUCATIONAL REVIEW INTERNATIONAL
VOLUME - 03 ISSUE – 3 Jul-Dec 2016

इस प्रकार कहा जाता सकता है कि पारिवारिक वातावरण बालक के व्यक्तित्व व आत्ममान पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। वीतस तथा स्टोर का कहना है – जिस परिवार में स्नेह सहयोग तथा प्रजातंत्र की भावना पायाी जाती है। इस परिवार में बालक बड़ी सरलता से वातावरण में समायोजन स्थापित कर लेते है। इसके विपरीत जिन परिवारों में लड़ाई–झगड़े माता–पिता का अलग–अलग रहना आदि बाते पायी जाती है। उकने बालक बाह्म वातावरण से समायोजन स्थापित करने में असमर्थता प्रकट करते है एवं कठिनाई का अनुभव करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लाल, आर एवं जैन – शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी लॉयल बुक डिपो, मेरठ
2. सिंह, डॉ. अरूण कुमार – शिक्षा मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी
3. बत्रा दीनानाथ – शिक्षा का भारतीयकरण
4. ऑबेरॉय डॉ.एस.सी – शिक्षा मनोविज्ञान, आर्य बुक डिपो, करोलबाग नई दिल्ली
5. गुप्ता, प्रोफेसर एस.पी. एवं गुप्ता डॉ. अल्का – उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद
6. माथुर, डॉ.एस.एस. – शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा

*****